भारतीय भाषाओं के विकास
और
साहित्य की समृद्धि में

श्रमणों का महत्त्वपूर्ण योगदान

डॉ. के. आर चन्द्र

प्राकृत जैन विद्या विकास फंड
अहमदाबाद-१५
१९७९

भारतीय भाषाओं के विकास और साहित्य की समृद्धि में श्रमणों का महत्त्वपूर्ण योगदान

डॉ. के. आर. चन्द्र

अध्यक्ष

प्राकृत–पालि विभाग

भाषा–साहित्य भवन

गुजरात युनिवर्सिटी

अहमदाबाद–९

प्राकृत जैन विद्या विकास फंड

अहमदाबाद–१५

१९७९

प्रकाशक
मंत्री
प्राकृत जैन विद्या विकास फंड
७७/३७५ सरस्वती नगर
वस्त्रापुर, अहमदाबाद-१५

प्रतियाँ १०००

मूल्य : डाक खर्च

प्रकाशन तिथि २०-१०-७९
वीर संवत् २५०५, कार्तिक ३०
विक्रम संवत्, दीपावली-२०३५

मुद्रक
के० भीखालाल भावसार
श्री स्वामिनारायण मुद्रण मंदिर
६१२/२१, पुरुषोत्तमनगर
नवा वाडज, अमदावाद-१३

सादर समर्पित

स्वर्गीय

पूज्य पिताश्री

कस्तूरचंदजी

पन्नाजी

को

जिन्होंने

पेशेवर व्यापारी होते हुए

भी

मुझे विद्याव्यसनी

बनने

में

पूर्ण सहायता

प्रदान की

एवं निरन्तर

प्रोत्साहित करते रहें

卐

गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद द्वारा मनोनीत प्रतिनिधि के रूप में लेखक द्वारा युनिवर्सिटी ग्रांट्स कमिशन, देहली की आर्थिक सहायता से पालि-प्राकृत-विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर के तत्त्वावधान में दिनांक २१ से २३ मार्च, १९७७ तक आयोजित "भारतीय संस्कृति के विकास में श्रमण संस्कृति का योगदान" नामक संगोष्ठी में पढ़ा गया एवं "तुलसी-प्रज्ञा" खं-२, अं-४ में प्रकाशित यह लेख किञ्चित् परिवर्तन के साथ लघु-पुस्तिका के रूप में साभार पुनः प्रकाशित किया जा रहा है।

ॐ

भारतीय भाषाओं के विकास और साहित्य की समृद्धि में श्रमणों का महत्त्वपूर्ण योगदान

डॉ० के० आर० चन्द्र, अहमदाबाद

प्राचीनकाल से ही भारत में दो सांस्कृतिक परंपराएँ विद्यमान रही हैं—वैदिक और श्रमण। वैदिक (ब्राह्मण) परंपरा ने संस्कृत भाषा को अपना प्रमुख माध्यम बनाया और धार्मिक क्षेत्र में इस देव-वाणी के सिवाय अन्य लोक-भाषाओं का बहिष्कार किया। संस्कृतेतर भाषाओं को अपभ्रष्ट माना गया और नाटकों में प्रयुक्त प्राकृत भाषाओं को हीन दर्जे की मानी गयी। अपवाद रूप में प्राकृत भाषा में रचा हुआ उनका कुछ शिष्ट साहित्य मिलता है।

इसके विपरीत श्रमण (जैन-बौद्ध) परंपरा लोकाभिमुख रही, अतः उसने भाषा-विशेष को पवित्र या अपवित्र नहीं माना परंतु अपना संदेश सभी स्तर के लोगों तक ले जाने के लिए यह परंपरा समय और क्षेत्र के अनुसार विकासमान नयी-नयी लोक भाषाओं को अपनाती रही और उन्हें साहित्यिक दर्जा दिलवाने में आगे रही। इसी के फल-स्वरूप अनेक लोक-भाषाएँ धार्मिक एवं शिष्ट साहित्य का माध्यम बनीं।

वैदिक परंपरा के समान श्रमणों के प्राचीन साहित्य का प्रारंभ भी धार्मिक साहित्य से ही हुआ और बाद में संस्कृत साहित्य के समान अनेक प्रकार का शिष्ट साहित्य मध्यकालीन

और अर्वाचीन लोक-भाषाओं में रचा गया। संस्कृत भाषा में साहित्य की जितनी विधाएँ प्राप्त हैं लगभग उतनी ही विधाएँ प्राकृत भाषाओं में भी प्राप्त हैं। इससे इन भाषाओं में संस्कृत के समकक्ष अभिव्यक्ति का सामर्थ्य है यह भी सिद्ध होता है। ये प्राकृत रचनाएँ भी भारतीय साहित्य में अपना एक महत्त्व-पूर्ण स्थान रखती है।

किसी भाषा-विशेष के प्रति मोह नहीं होने के कारण श्रमण-परंपरा ने संस्कृत भाषा को भी अपनाया। श्रमणों को जब यह प्रतीति हुई कि प्रचलित लोक-भाषा प्राकृत के माध्यम से सामान्य जनता तक तो पहुँचा जा सकता है परंतु विद्वानों की मंडली में अपने विचार पहुँचाने हो तो संस्कृत भाषा का प्रयोग भी आवश्यक है, तब उन्होंने इस भाषा में भी साहित्य का निर्माण करना शुरु किया और इस के फलस्वरूप इस भाषा में भी साहित्य के लगभग सभी प्रकारों की रचनाएँ मिलती हैं। उपलब्ध संस्कृत साहित्य में श्रमणों की संस्कृत रचनाओं का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है।

भारतीय आर्य भाषाओं का ईसा पूर्व पाँचवीं शती से आज तक का क्रमिक विकास जानने के लिए श्रमण-साहित्य (खास कर के जैनों की कृतियाँ) ही मुख्य साधन है और इस दिशा में श्रमणों की बड़ी ही महत्त्वपूर्ण देन है। कुछ श्रमणेतर प्राकृत रचनाएँ प्राप्त हैं परंतु उनमें से अधिकतर कृतियाँ संस्कृत भाषा में सोचकर शिष्ट प्राकृत भाषाओं में उतारी गयी हैं, अतः उनमें मूल लोक-भाषाओं के वे स्वाभाविक तत्त्व नहीं मिलते जो श्रमण साहित्य में उपलब्ध हैं। गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी आदि आधुनिक भाषाओं का प्रारंभिक साहित्य (खास कर जैनों) श्रमणों द्वारा ही रचा गया है और श्रमण लोग इसीलिए इन साहित्यों के आदि सर्जक कहलाते हैं।

प्राकृत भाषाओं का साहित्य मागधी-पालि, अर्धमागधी, शौरसेनी, महाराष्ट्री, अपभ्रंश और अवहट्ठ भाषाओं में मिलता हैं। इन भाषाओं में शिष्ट साहित्य के रूप में कथा और काव्य ही नहीं परंतु दर्शन और तत्त्वज्ञान जैसे गंभीर विषयों पर भी साहित्य उपलब्ध है। अन्य विविध प्रकार के साहित्य की उपलब्धि से भी इन भाषाओं की सामर्थ्य-शक्ति सिद्ध होती है। लोक-प्रचलित अनेक राग और छंद तथा अनेक विधाओं का उपयोग और संरक्षण भी इसी परंपरा में हुआ है। भारतीय लोक-संस्कृति का सर्वाङ्गीण दर्शन भी इसी साहित्य से पूर्ण होता है।

आर्य भाषाओं तक ही श्रमणों का क्षेत्र सीमित नहीं रहा परंतु द्राविडी भाषाओं को भी उनका योगदान रहा है। तामिल और कन्नड भाषाओं के प्राचीनतम साहित्य में भी श्रमणों का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

1. प्राकृत भाषाओं में उपलब्ध श्रमणों का विविध प्रकार का साहित्य और उसका महत्त्व

नीचे विषयवार विभाजन सामान्य तौर पर किया गया है। इसका अर्थ यह नहीं है कि अमुक ग्रन्थ में अन्य विषय मिलते ही नहीं अथवा अमुक विषय अन्य ग्रंन्थों में मिलते ही नहीं।

(अ) पालि-मागधी (बौद्ध) साहित्य (ई० स० पूर्व ६०० से ६०० ई०स० तक)

'अर्धमागधी आगम' की कुछ कृतियों के समान 'पालि (बौद्ध) त्रिपिटक' की भी कुछ कृतियाँ संस्कृतेतर साहित्य में प्राचीनतम

समझी जाती हैं। 'पालि त्रिपिटक' के मुख्य तीन विभाग हैं— 'सुत्त', 'विनय' और 'अभिधम्म'। 'सुत्त पिटक' में सरल पद्धति से भगवान बुद्ध के सिद्धान्त समझाये गये हैं। 'विनय पिटक' में आचार और संघ संबंधी नियम हैं तथा प्रायश्चित्त और शिक्षा (सज़ा) सम्बंधी विधान हैं। 'अभिधम्मपिटक' में सूक्ष्म दृष्टि से तत्त्वज्ञान समझाया गया है। इनमें से कुछ ग्रन्थों की विशेषता इस प्रकार है :-

'थेर-गाथा' और 'थेरी-गाथा' में हमें गीतिकाव्य के दर्शन होते हैं, 'अंगुत्तर-निकाय' में विषयों का संख्यात्मक वर्गीकरण मिलता है, 'धम्मपद' उपदेशात्मक सूक्तियों का एक अद्‌भुत ग्रन्थ है। 'बुद्धवंश' में २४ बुद्धों की जीवनी मिलती है और 'चरिया-पिटक' में बुद्ध के पूर्व-भव की कथाएँ हैं। 'अभिधम्म' में चित्त का विश्लेषण उत्तम ढंग से हुआ है। प्रियदर्शी अशोक के द्वारा उत्कीर्ण किये गये लेख भी प्राचीनतम 'पालि-लेख' हैं।

'त्रिपिटक' के बाद 'मिलिन्दपञ्हो' को दार्शनिक और संवादात्मक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है।

'त्रिपिटक' ग्रंथों के टीका साहित्य में 'पालि अट्ठकथाएँ' आती हैं जिनकी रचना मुख्यतः बुद्धदत्त, बुद्‌धघोष और धम्मपाल द्वारा की गयी हैं। 'जातक-अट्ठ-कथा-ग्रंथ' लोक-कथाओं का अद्वितीय खज़ाना है जिसमें रोमांचकारी, नैतिक, विनोदात्मक, धार्मिक और पशु-कथाएँ मिलती हैं।

(ब) अर्धमागधी (जैन) साहित्य (ई० स० पूर्व० ५०० से ६०० ई० स० तक)

'अर्धमागधी साहित्य' निम्नलिखित विषयों पर मिलता है :—

(१) सिद्धान्त स्व और पर (सूत्रकृताङ्ग, उत्तराध्ययन, भगवती, स्थानाङ्ग, राजप्रश्नीय, औपपातिक, उपासकदशा, इत्यादि)

(२) आचार (आचाराङ्ग, उपासकदशा)

(३) आराधना, स्तव, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित्त, व्यवहार, क्रियानुष्ठान, भोजन-वस्त्र-निवास और समाधि संबंधी (दशप्रकीर्णक, छेदसूत्र, आवश्यक, पिंडनिर्युक्ति ओघनिर्युक्ति, आदि)

(४) कथात्मक (धार्मिक, औपदेशिक, अर्ध-ऐतिहासिक, पौराणिक) ज्ञाताधर्म, उत्तराध्ययन, अनुत्तरोपपातिक, अन्तकृत, विपाकसूत्र, निरयावलिका, इत्यादि)

(५) भूगोल-खगोल (जम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति, जीवाजीवाभिगम)

(६) ज्योतिष (गणिविद्या, ज्योतिषकरण्डक)

(७) सामुद्रिक (अंगविद्या)

(८) चरित (कल्पसूत्र)

(९) आचार्य-परंपरा (नंदीसूत्र)

(१०) ज्ञानचर्चा (नंदी और अनुयोगद्वार)

(११) उपदेशात्मक सूक्ति (ऋषि-भाषितानि)

इस (जैन) 'आगम साहित्य' पर प्राकृत में निर्युक्ति, भाष्य, और चूर्णी के रूप में टीका साहित्य मिलता है। चूर्णियाँ गद्य में लिखी गयी हैं और उनमें रोचक कथाएँ भी मिलती हैं।

(स) शौरसेनी (जैन) साहित्य (ई० स० १०० से १५०० तक)

'शौरसेनी साहित्य' के विषय निम्न प्रकार से हैं :-

(१) सिद्धान्त और कर्म (षट्खंडागम, धवला, महाधवला, कषायप्राभृत, प्रवचनसार, समयसार, पंचास्तिकाय, गोम्मटसार, द्रव्यसंग्रह, इत्यादि)

(२) आचार, आराधना, प्रायश्चित्त (मूलाचार, नियमसार, भगवती–आराधना, वसुनंदि–श्रावकाचार, छेदपिण्ड इत्यादि)

(३) नय (नयचक्र-देवसेनसूरि, बृहन्नयचक्र-माइल्लधवल)

(४) भूगोल-खगोल-गणित (त्रिलोकप्रज्ञप्ति, जम्बुद्वीपप्रज्ञप्ति-संग्रह)

(५) ध्यान (मोक्षप्राभृत द्वादशानुप्रेक्षा)

(द) प्राकृत और महाराष्ट्री (जैन) साहित्य (ई० स० १०० से १५०० तक)

(१) जैनधर्मी महाराजा खारवेल का प्राकृत शिलालेख

'महाराष्ट्री प्राकृत' साहित्य निम्न प्रकार से उपलब्ध है :—

(२) पुराण-चरित (पउमचरियं, जंबूचरियं और अनेक तीर्थंकर चरित)

(३) चरितसंग्रह (चउप्पन्नमहापुरिसचरियं (गद्य-पद्य), कहावलि (गद्य), इत्यादि)

(४) रोमान्स कथा (तरंगलोला, वसुदेवहिंडी, कुवलयमाला, इत्यादि)

(५) उत्तम काव्य (कुवलयमाला, सुरसुन्दरीचरियं, इत्यादि)

(६) चम्पू (समराइच्चकहा, कुवलयमाला, इत्यादि)

(७) उपहासात्मक कथा (धूर्ताख्यान)

(८) औपदेशिक कथा और कथा-कोष (उपदेशमाला, उपदेश-पद, कथाकोषप्रकरण, आख्यानकमणिकोष, इत्यादि)

(९) द्विसंधान काव्य (कुमारपालचरित)

(१०) स्त्रोत्र (उवसग्गहर, लोगस्स, ऋषभपंचाशिका, अजिय-संति-थव)

(११) सुभाषित (बप्पभट्टि का तारागण, गाहारयणकोस, वज्जालग्ग)

(१२) नाटक (सट्टक-रंभामंजरी)

(१३) अलंकार (अलंकारदप्पण)

(१४) व्याकरण (चण्ड और हेमचन्द्र)

(१५) छन्द (स्वयंभूछन्दस्, छन्दोनुशासन, कविदर्पण)

(१६) कोष (पाइयलच्छीनाममाला, देशीनाममाला)

(क) तत्त्वज्ञान, सिद्धान्त और आचार संबंधी अन्य (जैन) प्राकृत साहित्य इस प्रकार है :—

(१) जैन तत्त्वज्ञान (विशेषावश्यकभाष्य, छठीं शती का)
|दर्शन खंडन-मंडन एवं अनेकान्त| (सन्मतिप्रकरण, धर्मसंग्रहणी)

(२) कर्मसिद्धान्त (कम्मपयडि, पंचसंग्रह एवं नव्यकर्म ग्रंथ १३वीं शती का)

(३) योग (योगविंशिका, योगशतक)

(४) क्रियाकाण्ड (विधिमार्गप्रपा, ई०स० १३०६, प्रवचनसारोद्धार, १३वीं शती)

(५) आचार(सावयपण्णत्ति, सावयधम्मविहि, पंचासक, प्रवचनसारोद्धार, इत्यादि)

(ख) अपभ्रंश साहित्य (ई० स० ८०० से १५०० तक)

प्राकृत साहित्य की परंपरा के अनुसार विविध विषयों और विधाओं में अपभ्रंश साहित्य का भी सृजन हुआ परंतु लोकशैली के प्रभाव के कारण उनके बाह्य स्वरूप और छन्दों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया । इस काल में संधि-काव्यों की नये नये छन्दों में रचनाएँ होने लगीं । गेयात्मक दोहा–साहित्य में एक नवीन प्रकार के साहित्य का उद्‌भव हुआ । यही प्रवृत्ति आगे चली और अनेक लोकप्रचलित राग और छन्दों का साहित्य में प्रयोग हुआ । इस उत्तरकालीन अपभ्रंश साहित्य को 'अवहट्ट' की संज्ञा दी गयी जो आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं का संधिकाल माना जाता है । इस अवहट्ट साहित्य में भी अनेक नवीन विधाओं का उद्‌भव हुआ जिनकी परंपरा आधुनिक भाषाओं में भी कुछ काल तक बनी रही ।

अपभ्रंश भाषा (जैनों) का विविध प्रकार का साहित्य इस प्रकार है :—

(१) चरित (पउमचरिउ, नायकुमारचरिउ, अनेक तीर्थंकरचरित इत्यादि)

(२) चरित-संग्रह (तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारु)

(३) कथाकोष (श्रीचन्द्र का कथाकोष, इत्यादि)

(४) उपहासात्मक कथा (धम्मपरिक्खा)

(५) रूपकात्मक काव्य (मदनपराजय, मोहराजविजय)

(६) अध्यात्म, ध्यान एवं योग संबंधी (बौद्धों का सिद्ध दोहा–साहित्य, जैनों का परमात्मप्रकाश, योगसार, पाहुडदोहा, इत्यादि)

(७) शृंगार और वीर रस संबंधी (हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण में प्राप्त उद्धरण)

(८) संधिकाव्य (भावना-संधि-प्रकरण)

(९) श्रावक धर्म (सावयदोहा)

(१०) स्तोत्र (जयतिहुयण-स्तोत्र)

(११) छन्द (स्वयंभू और हेमचन्द्र की कृतियाँ)

रास, फागु, बारहमासा, छप्पय, विवाहलु, इत्यादि नवीन प्रकार (मुख्यतः जैनों) की अपभ्रंश रचनाएँ १२ वीं शती से मिलती हैं । ये उत्तरकालीन अपभ्रंश कृतियाँ मानी जाती हैं । आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के विद्वान इन्हें अपनी अपनी भाषा का आदि साहित्य मानते हैं । वास्तव में यह संधिकालीन साहित्य है और इसकी परंपरा आधुनिक भाषाओं के साहित्य में बनी रही, अतः इनकी चर्चा आगे आधुनिक भाषाओं के प्राचीन साहित्य के अन्तर्गत की गयी है ।

२. उपलब्ध प्राकृत साहित्य की भारतीय साहित्य को महत्त्वपूर्ण देन

यहाँ पर 'प्राकृत-साहित्य' के अन्तर्गत 'पालि' और 'अपभ्रंश' साहित्य का भी समावेश किया गया है । भारतीय आर्य भाषाओं के आज तक के उपलब्ध साहित्य में श्रमणों के 'प्राकृत साहित्य' का कुछ महत्त्वपूर्ण और विशेष प्रदान इस प्रकार है :—

(अ) 'शिलालेख'—उपलब्ध शिलालेखों में सम्राट अशोक

(बौद्ध) और खारवेल(जैन) के पालि और प्राकृत शिलालेख ही भारत के सबसे प्राचीन शिलालेख हैं। अन्य सभी उत्कीर्ण लेख इनके बाद के हैं।

(ब) 'उपदेशात्मक सूक्ति-संग्रह'—'धम्मपद' (बौद्ध) सदाचार सम्बंधी सूक्तियों का श्रेष्ठ और प्राचीनतम काव्यात्मक संग्रह ग्रंथ माना जाता है।

(स) 'उपदेशात्मक कथा-संग्रह' :

१. 'नायाधम्मकहाओ' (जैन) गद्य कथाओं का एक प्राचीन संग्रहात्मक ग्रंथ है जिसमें मुनियों को अपने आचरण और संयम में सुदृढ करने के लिए दृष्टांत कथाएँ मिलती हैं।

२. 'जातककथा' (बौद्ध) का पद्य भाग प्राचीन माना जाता है। यह भी कथाओं का संग्रहग्रंथ है। इसमें भगवान् बुद्ध के पूर्व-जन्म की कथाएँ दी गयी हैं जिसका हेतु पारमिताओं का परिशीलन करना है। लोक-कथाओं की दृष्टि से यह बहुत महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है।

३. 'विवागसुय' (जैन) और 'अवदान' (बौद्ध) जैसे ग्रंथों में पूर्व-भव में किये गये कार्यों का इस जन्म में अच्छा या बुरा फल देने वाली कथाओं का प्राचीनतम संग्रह है। 'जातकट्ठकथा' (बौद्ध) में भगवान् बुद्ध के ही पूर्व भवों की कथाएँ आती हैं परन्तु इन ग्रन्थों में अनेक लोक पात्रों की भी कथाएँ हैं।

(द) 'गद्यात्मक चरित एवं रोमांस'–'वसुदेवचरित' या 'वसुदेव-हिंडी' (जैन) उपलब्ध भारतीय साहित्य में प्रथम गद्य-चरित एवं गद्य-रोमांस कथा है।

(क) 'पद्यात्मक-चरित'—चरित शीर्षक वाली पद्यात्मक कृतियों में 'पउमचरिय'' और 'पउम-चरिउ' (जैन) प्रथम रचनाएँ हैं।

(ख) 'चम्पूकाव्य'—उपलब्ध चम्पू-काव्यों में 'समराइच्चकहा' और 'कुवलयमाला' का (जैन कृतियाँ) स्थान प्रथम है।

(ग) 'अपभ्रंश की नवीन विधाएँ'—उत्तर-अपभ्रंश अथवा अवहट्ठ भाषा में जो नवीन प्रकार का साहित्य रचा गया वह श्रमणों का ही विपुल साहित्य है, श्रमणेतर साहित्य बहुत कम मिलता है और वह भी बाद का है। यह साहित्य दोहासाहित्य (बौद्ध), रास, फागु, चूनडी, चर्चरी, बारहमासा (जैन), इत्यादि हैं।

(घ) 'चरित-संग्रह'—इस प्रकार की रचनाओं में अनेक महापुरुषों के चरित एक ही ग्रंथ में दिये हुए होते हैं। चउप्पन्नमहापुरिसचरियं, कहावली, तिसट्ठिमहापुरिसगुणालंकारु (जैन) इत्यादि ऐसे हो ग्रन्थ हैं। पालि का 'बुद्धवंस' (बौद्ध) भी इसी प्रकार की रचना है। ये रचनाएँ 'पुराण' भी कहलाती हैं परंतु इनकी कुछ विशेषता है। हिन्दू पुराणों में शैलीगत शिथिलता और कहीं कहीं पर अव्यवस्था और पुनरावर्तन भी होता है। इनमें जीवन-चरित के अलावा कितने ही अन्य पौराणिक विषयों का भरपूर वर्णन भी होता है। हरेक पुराण में मुख्य पात्र के रूप में एक या दो अवतारों का ही वर्णन होता है और काव्यात्मक शैली के सामान्यतः दर्शन नहीं होते। जब कि इन श्रमण चरित-संग्रहों में महान-पुरुषों के जीवन-चरित का एक ही जगह पर संग्रह मिलता है और उन्हें सामान्य या विशेष काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है। इस प्रकार ये रचनाएँ एक प्रकार से न्यूनाधिक रूप में पुराण और काव्यामत्क शैलो का मिश्रण लिए हुए हैं।

(ङ) 'उपहासात्मक कथा'—हरिभद्रसूरि का 'धूर्ताख्यान' (जैन) इसी प्रकार की प्रथम स्वतंत्र और बेजोड़ उपहासात्मक रचना है जिसमें कथाओं द्वारा अन्धविश्वास पर व्यंग किया गया है।

(च) 'संख्यात्मक-वर्गीकरण'—'अंगुत्तरनिकाय' (बौद्ध), 'स्थानांग, समवायांग' (जैन), इत्यादि में अनेक विषयों की जानकारी संख्यात्मक पद्धति में दी गयी है। इस प्रकार का कोई स्वतंत्र श्रमणेतर ग्रंथ ध्यान में नहीं है।

(छ) 'संवादात्मक-सिद्धान्त-चर्चा'—पालि भाषा का 'मिलिन्द्-पञ्हो' (बौद्ध) ही एक ऐसा ग्रंथ है जिसमें एक मात्र दार्शनिक विषय को संवादात्मक रूप में सुन्दर काव्यात्मक व सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत किया गया है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें अन्य किसी विषय की चर्चा नहीं है। इस प्रकार का इसके पहले का कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है।

(ज) 'रूपकात्मक-काव्य'—'मदनपराजय' (जैन) में काम, मोह, अहंकार, अज्ञान, राग-द्वेष, जिनराज आदि पात्र बनाये गये हैं और अन्त में जिनराज मुक्तिरूपी अंगना से विवाह करते हैं। यह पन्द्रहवीं शती की हरिदेव की रचना है। इस शैली के श्रमणेतर नाटक तो इससे भी प्राचीन मिलते हैं परंतु ऐसा कोई काव्य ख्याल में नहीं आया है।

(झ) 'कर्म-साहित्य'—इस प्रकार का साहित्य तो श्रमण-परंपरा में ही उपलब्ध है। 'अभिधम्म' (बौद्ध) में सूक्ष्म चित्त-विश्लेषण पाया जाता है और जैनों के महाबंध, कम्मपयडी, इत्यादि में कर्म का सूक्ष्म विवेचन पाया जाता है।

(ञ) 'द्वयाश्रय-काव्य'—इस काव्य (प्राकृत अंश) की यह विशेषता है कि इसमें कुमारपाल के चरित के साथ साथ प्राकृत व्याकरण के नियम समझाये गये है। जैनों के सिवाय अन्य किसी की ऐसी कृति नहीं मिलती है जिसमें इस प्रकार प्राकृत व्याकरण समझाया गया हो।

(ट) 'व्याकरण'—हेमचन्द्रसूरि का 'प्राकृत व्याकरण' (जैन) ही प्रथम ऐसा व्याकरण है जिसमें सभी साहित्यिक प्राकृत भाषाओं का (पालि के सिवाय) समावेश करते हुए उन्हें विस्तार-पूर्वक समझाया गया है।

(ठ) 'छन्द'—'स्वयंभूछन्दस्' (जैन)में प्राकृत और अपभ्रंश छन्दों का सर्वांगीण निरूपण मिलता है। हेमचन्द्र का 'छन्दोनुशासन' (जैन) भी श्रेष्ठ छन्द ग्रंथ माना गया है जिसमें उस उस भाषा में नाम सहित छन्दों के उदाहरण दिये गये हैं।

(ड) 'शब्द-कोष'—'पाइयलच्छीनाममाला' और 'देशीनाममाला' ही प्राकृत के शब्द कोष हैं। इनकी रचना जैनों ने की हैं।

३. <u>उपलब्ध संस्कृत साहित्य में श्रमणों का महत्त्वपूर्ण प्रदान :</u>

संस्कृत भाषा में साहित्यिक निर्माण करने में श्रमण लोग पीछे नहीं रहे। भाषा-विशेष के प्रति कदाग्रह या मोह नहीं होने के कारण संस्कृत भाषा में भी उन्होंने लगभग सभी प्रकार की विधाओं में साहित्य का निर्माण किया। साहित्य के उन सभी प्रकार के उदाहरण देने की आवश्यकता नहीं हैं। उपलब्ध भारतीय संस्कृत साहित्य में श्रमणों की संस्कृत कृतियों का कुछ महत्त्वपूर्ण प्रदान इस प्रकार है :—

(अ) 'नाटक'—अश्वघोष (बौद्ध) का 'शारिपुत्रप्रकरण' भारतवर्ष में उपलब्ध नाटकों में प्रथम है। उन्हीं का एक रूपकात्मक

नाटक खंडित अंशों में उपलब्ध है उसका भी रूपक-साहित्य में प्रथम स्थान है।

(ब) 'ललित-काव्य'—अश्वघोष का 'बुद्धचरित' प्रथम ललित काव्य माना जाता है। चरित संज्ञावाले काव्यों या कृतियों में भी इस को प्रथम स्थान प्राप्त है।

(स) 'उपदेशात्मक कथा-काव्य'—इस वर्ग में 'अवदान-शतक', 'दिव्यावदान' (बौद्ध) आदि को प्रथम स्थान मिलता है। इसमें त्याग, दान, पुण्य, पाप आदि और पूर्व कर्मों का फल दिखाया गया है।

(द) 'रूपकात्मक-कथा-काव्य'—'उपमितिभवप्रपञ्चाकथा' (जैन जिसकी रचना ई० स० ९०६ में हुई है संस्कृत साहित्य में इस प्रकार की यह अद्भुत रचना मानी जाती है।

(क) 'सुभाषित संग्रह'—'कवीन्द्रवचनसमुच्चय' १०वीं शती के अन्त की एक बौद्ध रचना है जिसमें अलग अलग विषयों पर सुभाषितों का संग्रह है। यह इस प्रकार की प्रथम रचना मानी जाती है। नन्दन का 'प्रसन्नसाहित्य-रत्नाकर' इसका अनुकरण माना जाता है।

(ख) 'स्तोत्र'—काव्यात्मक शैली में लिखे गये स्तोत्रों में मातृचेट (बौद्ध) का 'चतुःशतकस्तोत्र', 'शतपञ्चाशतकस्तोत्र' इत्यादि, सिद्धसेन (जैन) की 'द्वात्रिंशिकाएँ' और 'कल्याणमन्दिर-स्तोत्र' तथा समन्तभद्र का 'स्वयंभू-स्तोत्र' प्राचीन गिने जाते हैं। शंकर के स्तोत्र और बाण के चण्डीस्तोत्र आदि तो इनके बाद में बने हैं।

(ग) 'द्विसन्धान काव्य'—धनञ्जय (जैन) का 'राघवपाण्डवीय' काव्य इस प्रकार की रचना है जिसमें हिन्दू 'रामायण' और 'महाभारत' दोनों का अर्थ घटित होता है। इसका समय ९वीं से ११वीं शती माना जाता है। इस कोटि की सन्ध्या-

करनन्दि की रचना 'रामपालचरित' है जिसमें बंगाल के राजा रामपाल तथा रामचरित का वर्णन है। परंतु इसका समय ११वीं शती के बाद का है।

(घ) 'अनेक सन्धान काव्य'—मेघविजयगणि (जैन) (ई.स. १७०३) ने 'सप्तसन्धान' काव्य की रचना की जिसमें नौ सर्ग और ४४२ श्लोक हैं। इसमें ऋषभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर तथा राम और कृष्ण का वर्णन है।

सोमप्रभाचार्य (जैन) (ई.स. ११७७) का 'शतार्थकाव्य' है जिसमें जैन तीर्थंकर, हिंदू देव, अनेक राजा, इत्यादि का वर्णन एक ही पद्य से फलित होता हैं। इसे समझाने के लिए उनकी अपनी ही उस पर वृत्ति है।

(ङ) 'शब्दकोष'—'अमरकोष' संस्कृत का प्रथम कोष है जो एक बौद्ध कृति मानी जाती है।

(च) 'दर्शन-संग्रह'—हरिभद्रसूरि का 'षड्दर्शनसमुच्चय' पहला ग्रंथ है जिसमें एक साथ अनेक दर्शनों का विवरण मिलता है। 'सर्वदर्शनसिद्धान्तसंग्रह', 'सर्वदर्शनसंग्रह' और 'सर्वमत-संग्रह' बाद के हैं। हरिभद्र के इस ग्रंथ में जैन, बौद्ध, नैयायिक, सांख्य, वैशेषिक, जैमिनीय (पूर्वमीमांसा) और लोकायत दर्शनों का वर्णन है।

(छ) 'योगप्रक्रिया'—असङ्ग का 'योगाचारभूमि' (बौद्ध) (तीसरी चौथी शती) योगप्रक्रिया का प्रथम ग्रंथ माना जाता है।

(ज) 'चरित-संग्रह'—सभी पौराणिक महान पुरुषों के चरितों को एक ही कृति में ग्रंथस्थ करने की यह पद्धति है। जिन-सेन-गुणभद्र (जैन) का 'महापुराण' और हेमचन्द्र का 'त्रिषष्टि-शलाका-पुरुष-चरित' उल्लेखनीय हैं। ऐसे ग्रन्थों की जो विशेषता है वह ऊपर बतला दी गयी है।

(झ) 'उपहासात्मक कथा'—इस प्रकार की कथाओं को एक ही कृति में ग्रन्थस्थ करने की यह विशेष पद्धति है। अमितगति द्वारा रचित 'धर्मपरीक्षा' (जैन) नामक ऐसा ही ग्रंथ है जिसमें अंधविश्वास पर व्यंग कसा गया है।

(ञ) 'पादपूर्ति काव्य'—अन्य रचनाओं के पद्यों में से अन्तिम चरण लेकर अपनी तरफ से प्रारंभिक तीन चरण जोड़ कर ये काव्य कृतियाँ (जैन) बनायी गयी हैं। 'मेघदूत' के आधार पर जिनसेन का 'पार्श्वाभ्युदय-काव्य', 'शिशुपालवध' के आधार पर मेघविजयगणि (१७वीं शती) का 'देवानन्द-महाकाव्य' और 'नैषध-चरित' के आधार पर 'शान्तिनाथ-चरित्र' ऐसी ही काव्य कृतियाँ हैं।

(ट) 'पादपूर्ति स्तोत्र'—ये स्तोत्र (जैन) प्राचीन स्तोत्रों के पद्यों के अन्तिम चरण के आधार पर बनाये गये हैं। 'कल्याण-मन्दिर–स्तोत्र' के आधार पर भानुप्रभसूरि (१७३४ ई. स.) का 'जैनधर्मवरस्तोत्र', 'भक्तामरस्तोत्र' के आधार पर समयसुन्दरगणि (ई.स. १६२३) का 'ऋषभ-भक्तामर स्तोत्र', अजैन, 'शिवमहिम्न-स्तोत्र' के आधार पर ऋषिवर्धनसूरि (१५वीं शती) का 'समस्या-महिम्नस्तोत्र' इत्यादि अनेक स्तोत्र मिलते हैं।

(ठ) 'विज्ञप्ति पत्र'—'प्रभाचन्द्रीय विज्ञप्ति' पत्र (जैन) (ल. १२०० ई. स.) : यह पत्र बड़ौदा से प्रभाचन्द्रसूरि द्वारा भानुप्रभसूरि पर लिखा गया है और इसकी शैली अलंकृत-काव्यमय है। इस प्रकार के अनेक विज्ञप्तिपत्र १८वीं शती तक के मिलते हैं।

(ड) 'कथाकोष'—ये अनेक लघु कथाओं के संग्रह (जैन) हैं जिनमें धार्मिक उपदेश देते हुए पुण्य और पाप का फल दिखाते हुए तथा विनय, दान, शील, संयम, तप इत्यादि के सुफल स्वरूप दृष्टान्त के रूप में कथाएँ कही गयी हैं। इस प्रकार के

अनेक ग्रंथों की रचना पद्य और गद्य में हुई हैं। हरिषेण (ई.स. ९३२) का 'बृहत्कथाकोष' (पद्य) और प्रभाचन्द्र (१३वीं शती) का 'कथाकोष' उदाहरण रूप हैं। काव्यात्मक दृष्टि से इनका इतना महत्त्व नहीं है जितना उपदेशात्मक दृष्टि से है।

(ढ) 'द्वयाश्रय काव्य'—द्वयाश्रयी काव्य के रूप में 'भट्टि-काव्य' (हिन्दू) प्रथम गिना जाता है। हेमचन्द्राचार्य का 'कुमार-पाल-चरित' बाद का है परंतु इसकी विशेषता यह है कि इसमें (संस्कृत अंश) 'सिद्धहेमशब्दानुशासन' के सूत्र क्रमपूर्वक दिये गये हैं और इसमें पौराणिक कथा के स्थान पर ऐतिहासिक सोलंकी वंश का वर्णन किया गया है।

(ण) 'छन्द'—हेमचन्द्र का 'छन्दोनुशासन' सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ माना गया है। इसे पूर्ववर्ती ग्रन्थों को ध्यान में रखकर रचा गया है। यह सबसे अधिक परिपूर्ण और अधिक विस्तृत है। उदाहरणों में ही उन उन छन्दों का नाम दिया गया है।

४. आधुनिक भारतीय आर्य भाषा-साहित्य को श्रमणों की देन

लगभग १२वीं से १४वीं शती तक उत्तर भारत की आर्य भाषाओं में काफ़ी परिवर्तन आया। मध्यकालीन भाषाओं और आधुनिक भाषाओं का यह संधि-काल माना जाता है। इस काल में अनेक गेयात्मक नवीन लोक-विधाओं का उद्भव हुआ और श्रमणों (जैनों) ने उन्हीं विधाओं में साहित्य का सृजन किया। इस काल की भाषा को अवहट्ठ अथवा उत्तरकालीन अपभ्रंश भी कहते हैं। पश्चिमी प्रदेश की भाषा को पश्चिमी राजस्थानी, पुरानी गुजराती, मारु-गौर्जर और गौर्जर-अपभ्रंश भी कहा गया है। इस पश्चिमी भाषा का १२वीं से १४वीं शती तक का साहित्य अधिकतर जैनों का ही रहा है और इस युग को जैन

रासा-युग कहा जाता है। इस युग में रास, चर्चरी, फागु, बारहमासा, छप्पय, विवाहलु, चउप्पई, कक्क, वर्णक, छन्द, विनती, धवलगीत, संवाद इत्यादि अनेक प्रकार की रचनाएँ लिखी गयीं।

इस साहित्य के विविध विषय लगभग परंपरागत ही थे, जैसे-पौराणिक, धार्मिक और ऐतिहासिक पुरुषों का चरित; रूपकात्मक और लौकिक कथाएँ; तीर्थ, प्रतिष्ठा, पूजा, स्तुति, तत्त्वज्ञान, उपदेश एवं सुभाषित। कथा, दार्शनिक चर्चा, धर्मसंवाद) वादविवाद, प्रश्नोत्तरी, व्याकरण इत्यादि का साहित्य गद्य शैली में मिलता है।

इस साहित्य की परंपरा १८वीं शती तक चलती रही और इसमें जैनों का योगदान लगातार बना रहा। इस युग की प्राचीनतम कृतियाँ इस प्रकार हैं जो सभी जैनों की रचनाएँ हैं :—

(क) 'रास'—भरतेश्वरबाहुबलिघोर—वज्रसेनसूरि (११६९)
भरतेश्वरबाहुबलिरास—शालिभद्र (११८५)

(ख) 'फागु'—जिनचन्द्रसूरिफागु (१२८५)
स्थूलभद्रफागु-जिनपद्मसूरि (१३३४)

(ग) 'बारहमासा'—नेमिनाथचतुष्पदिका—विनयचंद्र (१२७५)

(घ) 'छप्पय'—उवएसमालकहाणयछप्पय—विनयचंद्र (१२७५)
खरतरगुरुगुणवर्णन—छप्पय (१५वीं शती)

(ङ) 'विवाहलु'—जिनेश्वरसूरि-विवाहलु—सोममूर्ति (१२७५ के पश्चात्)

(च) 'चर्चरी'—सोलणचर्चरी (गिरनारयात्रा) (१४वीं शती)
सम्यक्त्वचउप्पई—जगडू (१२७५)

(छ) 'मातृकाचउप्पई'—गोराबादलचउप्पई—हेमरत्न (१५८०)

(ज) 'कक्क'—शालिभद्रकक्क—पद्म (१३वीं शती)

(झ) 'धवलगीत'—जिनपतिसूरिधवल (मंगल) गीत (१३वीं शती)
—साहरयण

(ञ) 'प्रबन्ध'—विमलप्रबन्ध—लावण्यसमय (१५१२)
हम्मीरप्रबंध—अमृतकलश (१५१९)

'रूपक' और 'लोककथा'

(ट) 'रूपक'—भव्यचरित्र—जिनप्रभाचार्य (१३वीं शती)

(ठ) 'लोक कथा'—हंसराज-वच्छराजचोपाई—विजयभद्र (१३५५)
ढोलामारु—कुशललाभ (१५६०)
सिंहासनबत्रीसी—हीरकलश (१५८०)

'गद्यमय कृतियाँ'—

(ड) 'बालावबोध'—(यह साहित्य-प्रकार कथासंक्षेप, दार्शनिक चर्चा, वादविवाद और प्रश्नोत्तरी के रूप में मिलता है।)
'आराधना' पर बालावबोध (१२७४)
'अतिचार' पर बालावबोध (१२८४)
'षडावश्यक'—बालावबोध—तरुणप्रभ (१३५५)

(ढ) 'वर्णक'—(अनेक वर्णनों से भरपूर)
पृथ्वीचन्द्रचरित—माणिक्यसुन्दर (१४२२)

(ण) 'व्याकरण'—बालशिक्षा—संग्रामसिंह (१२८०)
मुग्धावबोध-औक्तिक—कुलमंडन (१३९४)

पन्द्रहवीं शती के कवि लावण्यसमय और समयसुन्दर की अनेक प्रकार की कृतियाँ, जैसे—स्तवन, सज्झाय, छंद, विनती, हमचडी, संवाद, गीत इत्यादि।

यह सभी साहित्य जैनों का है और गुजराती तथा राजस्थानी के विद्वान् इस साहित्य को अपनी-अपनी भाषा का आदिकालीन साहित्य मानते हैं। यहाँ तक कि जो गद्य कृतियाँ ऊपर बतलायी गई हैं वे गुजराती और राजस्थानी की आदि गद्य कृतियाँ मानी जाती हैं। इस प्रकार की साहित्य विधाओं का सर्जन गुजराती और राजस्थानी में काफ़ी समय तक होता रहा। १३वीं से १५वीं शती तक राजस्थानी और गुजराती भाषा एक ही थी, अतः दोनों भाषावाले इन कृतियो में अपनी अपनी भाषा की प्रारम्भिक अवस्था के दर्शन करते हैं और इन में ही मारवाड़ी, मेवाड़ी, ढूँढाणी, मेवाती, हाड़ौती, मालवी, निमाड़ी आदि भाषाओं का समावेश करते हैं।

हिन्दी भाषा के विद्वान् भी इस (रास, फागु, चर्चरी आदि के) जैन साहित्य को हिन्दी का आदिकालीन साहित्य मानते हैं। पहले वीरगाथाकाल हिन्दी का प्रारम्भिक साहित्य माना जाता था और 'वीसलदेव–रासो' तथा 'पृथ्वीराज–रासो' इत्यादि हिन्दी की आदिकृतियाँ मानी जातीथीं परन्तु अब उपर्युक्त रास और फागु कृतियों में हिन्दी भाषा के आदिम दर्शन किये जाते हैं।

रल्ह की जिनदत्त चौपाई (१२९७) को श्री अगरचन्दजी नाहटा बृजभाषा की पुरानी कृति मानते हैं जो सधारु के प्रद्युम्न-चरित (१३५४) से पहले की है। राजसिंह का जिनदत्तचरित (१२९७) पुरानी हिन्दी का प्रथम बड़ा ग्रन्थ माना जाता है। पश्चिमी हिन्दी के गद्य का नमूना 'उपदेशमाला' पर लिखी गयी सोमसुन्दर की टीका (१५वीं शती का प्रथमपाद) में मिलता है। हिन्दी की प्राचीनता के दर्शन बौद्ध सिद्धों के दोहा–साहित्य में (८ से १२वीं शती) और पुष्पदंत तथा स्वयंभू (जैनों) की अपभ्रंश कृतियों में भी कराये जाते हैं। कुछ विद्वान् पुष्पदंत की

कृतियों में मराठी भाषा के अदिम दर्शन करते हैं। "कहने का तात्पर्य यह हैं कि जैनों और बौद्धों ने लोक भाषायें अपनायीं और उन भाषाओं में उनका ई. पू. छठीं से ई. स. पन्द्रहवीं शती तक का जो क्रमबद्ध साहित्य मिलता है उसमें आर्य भाषाओं के २००० वर्ष तक के विकास की व्यवस्थित और विशद सामग्री मिलती है जो श्रमणेतर साहित्य में शायद ही मिलती है और इसमें अनेक नयी-नयी साहित्य-विधाओं के दर्शन भी होते हैं"।

५. द्राविड़ी भाषाओं और साहित्य को श्रमणों का प्रदान

जैन-श्रमणों ने भद्रबाहु के साथ दक्षिण में जाकर वहाँ पर अपना साहित्य-सृजन प्रारम्भ किया था। उसके कारण कन्नड भाषा और तामिल भाषा प्राकृत शब्दावली से समृद्ध बनी। प्राकृत ग्रन्थों पर कन्नड टीकायें लिखी गयीं इससे कन्नड़ भाषा में अनेक प्राकृत शब्द आये। कन्नड़ साहित्य के कालक्रम से तीन विभाग किये जाते हैं। उनमें से पहला विभाग ५वीं से १२वीं शती तक का माना जाता है और उसे 'जैनयुग' कहा जाता है। इस युग की लगभग सभी कृतियाँ जैनों की ही मिलती हैं। बोलचाल की भाषा को इधर भी, इस प्रदेश में भी साहित्यिक दर्जा दिलवाने, उसे उन्नत और प्रौढ़ स्थिति प्राप्त करवाने का श्रेय श्रमणों को ही है और इसीलिए श्रमण (जैन) ही कन्नड भाषा के आदि कवि माने जाते हैं।

कन्नड साहित्य का प्रथम उपलब्ध ग्रन्थ श्रमणों की रचना है। वह है नृपतुंग द्वारा रचित 'कविराज-मार्ग' जो एक अलंकार (ई.स. ८१४-८७७) ग्रन्थ है। इसमें अनेक पूर्व-कवियों के उल्लेख हैं और उनमें 'दुर्विनीत' का नाम भी है जो गंगवंशीय राजा थे और उनका राज्यकाल ई.स. ४८७ से ५१३ तक था। सातवीं शती के भी कुछ ग्रन्थों का उल्लेख अन्यत्र

हुआ है और वे इस प्रकार हैं—'तत्त्वार्थ' पर श्री 'वर्धदेव' या 'तुंबुलूराचार्य' की कन्नड 'चूडामणि टीका,' 'श्याम कुन्दाचार्य' का 'प्राभृत ग्रन्थ', 'भ्रजिष्णु' की 'आराधना' पर 'टीका', 'असग' (ई.स. ८५४) का 'वर्धमान-चरित' इत्यादि।

उपलब्ध साहित्य में 'कविराजमार्ग' के बाद 'वड्डाराधने' का क्रम आता है जो ई. स. ९२० की रचना है। यह कन्नड साहित्य की प्रथम उपलब्ध गद्य कृति है जो 'भगवती-आराधना' पर आधारित है। इसमें अनेक कथाओं का संग्रह है। बाद की गद्य कृति 'चावुंडरायपुराण' (त्रिषष्टिपुरुष) है जिसकी रचना चावुंडराय ने ई. स. ९७८ में की थी। लगभग इसी काल दरमियान तीन महाकवि हुए जिन्होंने चम्पू-काव्यों की रचना की: 'पम्प' का 'आदिपुराण' (ई. स. ९४०), 'पोन्न' का 'शांति-पुराण' (ई. स. ९५०), और 'रन्न' का 'अजितपुराण' (ई. स. ९९३)। पंप कन्नड साहित्य के आदिकवि माने जाते हैं। उन्होंने जैन धर्म सम्बंधी साहित्य के सिवाय 'विक्रमार्जुनविजय' काव्य भी लिखा। इस युग को 'पंपयुग' भी कहा जाता है। रन्न की लौकिक विषयों पर रचनाएँ मिलती हैं जैसे—गदायुद्ध (चम्पू) और रन्न-कंद (निघंटु)। 'नेमिचन्द्र' की ई० स० ११७० की 'लीलावती' कथा मिलती है। इसके अतिरिक्त अनेक धार्मिक टीका-ग्रन्थ उत्तरोत्तर काल के मिलते हैं।

तामिल साहित्य का 'संगम काल' बहुत प्राचीन माना जाता है परन्तु उस काल की कृतियाँ नष्टप्रायः हो गयी हैं। 'तोल-काप्पियम्' (व्याकरण ग्रंथ) और 'तिरुक्कुरल' (उपदेशात्मक ग्रंथ) उस काल की बची हुयी रचनाएँ मानी जाती हैं। इन दोनों ही ग्रंथों को श्रमण और ब्राह्मण दोनों अपनी अपनी कृतियाँ मानते हैं। इनके कर्ता और समय के विषय में वादविवाद

चलता रहा है। तिरुक्कुरल में श्रमणों की सन्त परम्परा का अधिक प्रभाव देखने को मिलता है। इसके अतिरिक्त 'उल्लोयनार' नाम के जैन कवि और 'इलम् पोतियार' नाम के बौद्ध कवि संगम-काल के ही माने जाते हैं।

संगम-काल स्फुट कविताओं का युग था परन्तु उसके बाद बृहत् काव्यों की रचना हुई जिस पर श्रमणों का प्रभाव स्पष्टतः दृष्टिगोचर होता है। इस काल के सर्वश्रेष्ठ माने जाने वाले पाँच काव्य हैं—'शिलप्पदिकारम्, 'मणिमेकलै', 'जीवकचिन्तामणि', 'वलैयापदि' (लुप्त) और 'कुण्डलकेशि'। कथानक की दृष्टि से मणिमेकलै शिलप्पदिकारम् का उत्तरार्ध माना जाता है। शिलप्पदिकारम् में बौद्ध धर्म का ओजस्वी चित्र काव्यमय शैली में खींचा गया है। जीवकचिन्तामणि नवीं शती के महाकवि जैन मुनि 'तिरुतक्कत्तेवर' की रचना है। कुंडलकेशि के रचनाकार बौद्ध नाथगुप्त थे। इसमें बौद्धमत की स्थापना की गयी थी। यह अनुपलब्ध है।

'नालदियार' एक नीतिग्रंथ है जिसके कर्त्ता जैन थे। इसमें सांसारिक सुखों की अनित्यता और संत जीवन की प्रशंसा की गयी है। इसका समय पाँचवीं शती का माना जाता है।

ईसा की नवीं शताब्दी के बाद जैनों के अनेक तामिल-संस्कृत मिश्रित मणि-प्रवाल शैली में गद्य ग्रंथ मिलते हैं—जैसे 'श्रीपुराण', 'गद्यचिन्तामणि', इत्यादि।

तामिल कोषों में तीन कोष महत्त्वपूर्ण माने जाते हैं, वे हैं—'दिवाकरनिघंटु' (अनुपलब्ध), 'पिंगलनिघंटु' और 'चूडामणि-निघंटु'। ये तीनों ही जैनों की कृतियाँ हैं।

इस विवरण से स्पष्ट है कि श्रमणों ने साहित्य-सृजन की परम्परा को अक्षुण्ण बनाये रक्खा है और उन्होंने लोक-भाषाओं को उतना ही महत्त्व प्रदान किया जितना शिष्ट भाषाओं को मिला है। साहित्य को नयी-नयी विधाएँ प्रदान करने में भी वे पीछे नहीं रहे। उनका २००० वर्ष का यह साहित्य भारत की अनेक भाषाओं के क्रमबद्ध विकास को जानने के लिए अत्यन्त उपयोगी और सर्वथा अनिवार्य है। इस साहित्य का आश्रय लिये बिना उस दिशा में एक कदम भी आगे बढ़ना त्रुटिपूर्ण गिना जाता है।

लेखक के अन्य प्रकाशन

I. **Books :**

1. Literary Evaluation of Paumacariyaṁ (the earliest Jain Ramayan in Prakrit) of Vimalasūri, 1966
2. A Critical Study of Paumacariyaṁ, (Part I — Narrative, Part II—Cultural), 1970.

3–4. Prakrit Proper Names Dictionary, Part I & II (with Dr. M. L. Mehta), 1970, 1972.

5. Bhagwan Mahavir—Prophet of Tolerance, 1975
6. Proceedings of the Seminar on Prakrit Studies (1973)

७. मुणिचंद–कहाणयं (બી.એ. પ્રથમ વર્ષ ગુજ. યુનિ., ૧૯૭૩)

८. अभयकखाणयं (બી.એ. પ્રથમ વર્ષ, ગુજ. યુનિ., ૧૯૭૫)

II सह–सम्पादक :

९. પ્રાકૃત ગદ્ય–પદ્ય–સંગ્રહ, ધોરણ–૧૧, ૧૯૭૬

१० પાલિ ગદ્ય-પદ્ય–સંગ્રહ, ધોરણ–૧૧, ૧૯૭૬

११ પ્રાકૃત ગદ્ય–પદ્ય–સંગ્રહ, ધોરણ–૧૨, ૧૯૭૭

III. Assistance in editing Prakrit Text :

१२ विशेषावश्यक भाष्य—जिनभद्र, Part II & III

IV लघु–पुस्तिका के रूप में :

१३. जैन धर्म का प्रचार, १९६८

१४. जैन पुराण साहित्य, १९६८

V—मुद्रणालय में :

१ प्राकृत (Middle Indo–Aryan) भाषाओं का व्याकरण

२ वसुदेवहिंडी की भाषा का सूक्ष्म अध्ययन

VI चालू संशोधन कार्य :

१. वसुदेवहिंडी का संशोधित संस्करण

२. प्राकृत कथा–कोष

VII. विविध ग्रंथों और पत्र–पत्रिकाओं में प्राकृत भाषा-साहित्य, और कथाओं एवं जैनधर्म संबंधी अंग्रेजी, हिन्दी और गुजराती भाषामें प्रकाशित लगभग ६० में से कुछ महत्त्वपूर्ण लेख :

1. Some Common Terms in Jainism and Buddhism.
2. Extent of the Influence of the Ram Story of Paumacariyaṁ
3. Notes on Some Words from Ācārāṅga.
4. The So Called Sanskrit Plays
5. Sources of Paumasiricariu of Dhāhila
6. A Study of Apabhraṁśa Passages in pre-tenth Century Prakrit Works
7. Proportion of Prakrit in Qur Ancient Classical Dramas
8. (Important) Prakrit Forms from the Vasudevahiṇḍī (in many articles)
9. Lord Mahavira and His Teachings
10. Message of Mahavir

११. पउमचरियं : संक्षिप्त कथावस्तु
१२. शृंगारमंजरी–सट्टक (नाटक) का हिन्दी अनुवाद
१३. भगवान महावीर का एक नया पूर्वभव
१४. संस्कृत की विकास यात्रा: पालि से अन्य प्राकृतों की तरफ
१५. पाइय-सद्द-महण्णवो (प्राकृत–शब्द–कोष) में अनुपलब्ध वसुदेवहिंडी के (अनेक) शब्द
१६. भगवान महावीर के जन्म-स्थल के विविध उल्लेख
१७. दशवैकालिक सूत्र में हिन्दी–शब्द-गवेषणा
१८. विदेशी राम–साहित्य पर जैन राम कथाओं का प्रभाव
१९. राक्षस एक मानव वंश
२०. विद्याधर एक मानव जाति
२१. क्या रावण के दश मुख थे ?
२२. रामकथा के वानर एक मानव जाति
२३. रामकथा विषयक कतिपय भ्रान्त धारणाएँ
२४. सर्वांगसुंदरी कथानक
२५. कुवलयमाला महाकथा की अवान्तर कथाएं और उनका वर्गीकरण
२६. राजस्थान का प्राकृत जैन साहित्य
२७. प्राचीन प्राकृत ग्रंथों में उपलब्ध भगवान महावीर का जीवन–चरित
२८. દશવૈકાલિક સૂત્રમાં ગુજરાતી–શબ્દ–શોધ
२९. રામકથા વિષે કેટલીક ગલત ધારણાઓ

प्राकृत जैन विद्या विकास फंड के उद्देश्य

(१) इस फंड का उद्देश्य प्राकृत भाषा और साहित्य तथा जैन दर्शन और साहित्य का अध्ययन करनेवाले विद्यार्थियों को आर्थिक सहायता देकर प्रोत्साहित करना।

(२) प्राकृत एवं जैन साहित्य का प्रकाशन करना एवं करवाना।

(३) संशोधन-कर्ताओं एवं विद्यार्थियों के लिए पाठ्यपुस्तक, फीस, स्टाइपेण्ड, स्कालरशिप, पारितोषिक एवं अन्य प्रकार की आर्थिक सहायता का प्रबन्ध करना या करवाना।

(४) प्राकृत एवं जैन विद्या सम्बंधी निबंध, संशोधन पत्र, ग्रंथ इत्यादि तैयार करवाना और उन्हें प्रकाशित करने का प्रबन्ध करना।

(५) प्राकृत एवं जैन विद्या सम्बंधी और भारतीय संस्कृति सम्बंधी विद्वानों के व्याख्यानों का प्रबंध करना।

(६) ऐसे और भी कार्य करना जो प्राकृत एवं जैन विद्या के विकास मे उपयोगी हो।

(७) उपर्युक्त प्रवृत्तियों का विकास करने के लिए धन-राशि एकत्रित करना, भेंट लेना एवं फंड की व्यवस्था करना।

(८) इस कार्य के लिए समान उद्देश्योंवाली संस्थाओं से सहयोग प्राप्त करना।

सदस्यों के प्रकार

१. आजीवन सदस्य

२. संरक्षक सदस्य रू. ५०१-००

३. स्तंभ सदस्य रू. १००१-००

कोई भी संस्था या फर्म आजीवन, संरक्षक या स्तंभ सदस्य बनकर अपना एक प्रतिनिधि भेज सकती है।

कार्यकारिणी समिति

१. श्री बख्तावरमलजी प्रतापमलजी बालर — अध्यक्ष
२७६, न्यू क्लोथ मार्केट, अहमदाबाद–२

२. डॉ. के. आर. चन्द्र — मंत्री
प्राकृत–पालि विभाग, गुजरात युनिवर्सिटी, अहमदाबाद–९

३. श्री नेमिचंदजी मुलतानमलजी वागरेचा — सदस्य
१७०, न्यू क्लोथ मार्केट, अहमदाबाद–२

४. श्री देवीचंदजी जे. जैन — सदस्य
द्वारा–शाह रमणलाल राजेन्द्रकुमार
२१८–ब, गुजरात जिनिंग मिल कम्पाउण्ड, अहमदाबाद–१०

५. प्रा. कानजीभाई एम. पटेल — सदस्य
४, कोलेज टीचर्स सोसायटी, पाटण

६. श्री कल्याणमलजी ओटरमलजी — सदस्य
२०३, न्यू क्लोथ मार्केट, अहमदाबाद–२

७. श्री सी. आर. जैन — सदस्य
द्वारा–रमेश मेडिकल होल,
९, समुद्र मुदळी लेन, मद्रास–३

८. श्री छगनलाल माणेकचंद — सदस्य
द्वारा–शाह वोराजी माणेकचंद,
१४०, गोविंदाप्पा नायक स्ट्रीट, मद्रास–२

९. श्री नारायण चन्द्र जी महेता — सहवृत्त सदस्य
८, दीनदयाल नगर, अहमदाबाद–१४

१०. रिक्त................. — सहवृत्त सदस्य